AVADH LAW COLLEGE

UMA SHANKAR

LL.B.3Year1Sem& LL.B.5Year1Sem

(UNIT-2)

अंतर्राष्ट्रीय विधि

मान्यता

मान्यता शब्द की अर्थ

मान्यता अंतर्राष्ट्रीय विधि का एक महत्वपूर्ण विषय है। मान्यता ही वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा नए राज्य को अंतरराष्ट्रीय समुदाय का सदस्य के रूप में स्वीकार किया जाता है। आधुनिक युग में मान्यता का महत्व और भी बढ़ गया है। प्रोफ़ेसर स्वार्जनबर्जर के अनुसार मान्यता को अंतर्राष्ट्रीय विधि को विकसित करती हुई उस प्रक्रिया द्वारा अधिक अच्छी तरह समझा जा सकता है जिसके द्वारा राज्यों ने एक दूसरे को नकारात्मक सार्वभौमिकता को स्वीकार कर लिया है और सहमति के आधार पर वह अपने कानूनी संबंधों को बढ़ाने के लिए भी तैयार हैं। प्रोफ़ेसर स्वार्जनबर्जर स्वतंत्र राज्यों के संबंधों की तुलना क्लबों से की है। उनके अनुसार, क्लबों के समान स्वतंत्र राज्यों का समुदाय भी सहयोग के सिद्धांत पर आधारित है। अपने इस परम अधिकार का प्रयोग करने के लिए अंतर्राष्ट्रीय विधि के विषय, मानवता का प्रयोग करते हैं।

मान्यता की परिभाषा

प्रोफेसर ओपनहाइम के अनुसार -किसी ने राज्य को अंतरराष्ट्रीय समुदाय के सदस्य के रूप में मान्यता प्रदान करने में, मान्यता प्रदान करने वाले राज्य यह घोषित करते हैं कि उनके मत में नए राज्य ने अंतर्राष्ट्रीय विधि में निर्दिष्ट राष्ट्रत्व के तत्व प्राप्त कर लिए हैं।

फेनविक के अनुसार - मान्यता द्वारा अंतरराष्ट्रीय समुदाय के सदस्य औपचारिक रूप से यह स्वीकार करते हैं कि नए राज्य ने अंतरराष्ट्रीय व्यक्तित्व को प्राप्त कर लिया है तथा अंतरराष्ट्रीय समुदाय के सदस्य के अधिकार तथा विशेष अधिकारों का अधिकारी है।

इंस्टीट्यूट ऑफ इंटरनेशनल लॉ के अनुसार - मान्यता प्रदान करना एक या एक से अधिक राज्यों के स्वतंत्र कार्य हैं जिनके द्वारा वह स्वीकार करते हैं कि किसी निश्चित भूमि पर राजनीतिक रूप से संगठित मनुष्य समुदाय एक स्वतंत्र राज्य है तथा वह अंतर्राष्ट्रीय विधि के दायित्व को पूरा करने के लिए समर्थ है और इस प्रकार मान्यता प्रदान करने वाले राज्य अपनी इच्छा प्रकट करते हैं कि वह नए राज्य को अंतरराष्ट्रीय समुदाय का एक सदस्य समझते हैं।

केल्सन के अनुसार- किसी समुदाय को अंतर्राष्ट्रीय विधि के अंतर्गत तभी मान्यता प्राप्त हो सकती है जबकि उसमें चार आवश्यक तत्व उपस्थित हों -1- वह राजनीतिक रूप से संगठित हो, 2- उसका किसी निश्चित भूमि पर नियंत्रण हो, 3- यह नियंत्रण प्रभावशाली हो तथा स्थायित्व की ओर बढ़ रहा हो और 4- यह समुदाय पूर्ण रूप से अन्य राज्यों से स्वतंत्र हो।

फिलिप सी जेसप के अनुसार- मान्यता किसी राज्य का कार्य है जिसके द्वारा वह यह स्वीकार करता है कि किसी राजनीतिक इकाई में राष्ट्रत्व के आवश्यक तत्व उपस्थित हैं।

मान्यता के मत

मान्यता के विषय में दो प्रमुख मत हैं 1- निर्माणात्मक मत 2- उद्घोषणात्मक अथवा प्रमाणात्मक मत।

निर्माणात्मक मत(Constiutive Theory) - इस मत के अनुसार मान्यता द्वारा ही राज्य राष्ट्रत्व को प्राप्त करता है तथा उसे अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्र में अधिकार प्राप्त होते हैं। यह वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा राजनीतिक समुदाय अंतर्राष्ट्रीय विधि के अंतर्गत राष्ट्र के परिवार का सदस्य बनकर अंतरराष्ट्रीय व्यक्तित्व प्राप्त करता है। इस मत मत के प्रवर्तक **हीगेल, एंजीलॉटी, हालैंड, न्यायमूर्ति लाटरपैट** आदि हैं।

निर्माणात्मक मत के अनुसार, राजनीतिक समुदायों द्वारा राष्ट्रत्व को प्राप्त होता है तथा अंतरराष्ट्रीय विधिक प्रणाली में भाग लेना तभी संभव है जब उन्हें स्थापित राज्य मान्यता प्रदान कर देते हैं। हालैंड भी निर्माणात्मक मत के समर्थक हैं, उनके अनुसार मान्यता राज्यों को परिपक्वता प्रदान करती है तथा जब तक किसी राज्य को मान्यता प्रदान नहीं होती है, 1 राज्यों के परिवार के सदस्य के रूप में अधिकार प्राप्त नहीं कर सकता। न्यायाधीश लाटर पैट ने भी यह प्रकट किया है कि निर्माणात्मक मत राज्य के अभ्यास के अनुसार तथा ठोस कानूनी सिद्धांत के अनुसार उचित प्रतीत होता है। परंतु अभ्यास में यह देखा जाता है कि उद्घोषणात्मक मत को अधिकतर राज्यों ने शिकार किया है। इस विषय में लाटर पैट का मत है कि पुरानी धारणा की मान्यता केवल राजनीतिक कार्य है, इसकी प्रक्रिया के रूप में राज्य उद्घोषणात्मक मत को स्वीकार करते हैं। उनके अनुसार हर राज्य का यह एक कानूनी कर्तव्य है कि जब किसी समुदाय में राष्ट्रत्व के आवश्यक तत्व मौजूद हो तो वह उसे प्रदान कर दे।

निर्माणात्मक मत की आलोचना - विदिशा स्त्रियों ने निर्माणात्मक मत की कड़ी आलोचना की है **एडवर्ड कॉलिंस** के अनुसार राज्य के व्यवहार से यह पता चलता है कि यद्यपि बहुदा राज्य ऐसे राज्यों तथा सरकारों को मान्यता प्रदान कर देते हैं जिनमें राज्य के व्यवहार से यह पता चलता है कि यद्यपि बहुदा राज्य ऐसे राज्यों तथा सरकारों को मान्यता प्रदान कर देते हैं जिनमें राष्ट्रत्व के गुण होते हैं, परंतु उन्होंने ऐसे कानूनी नियमों के प्रति अपनी सहमति प्रकट नहीं की है जिनके द्वारा उनके ऊपर, ऐसा करने का उत्तरदायित्व हो।

निर्माणात्मक मत में कुछ और अवगुण हैं, इस मत के अनुसार जिस राज्य को मान्यता नहीं मिलती है, उसे अंतर्राष्ट्रीय विधि में ना तो कोई अधिकार है और ना उत्तरदायित्व है। यह बहुत ही बेतुका सुझाव है। यदि यह मान

लिया जाए कि बिना मान्यता के किसी राज्य को अंतर्राष्ट्रीय विधि में कोई अधिकार प्राप्त नहीं है तो यह स्पष्ट नहीं होता है कि उस दशा में क्या होगा जब किसी ने राज्य को कुछ राज्य को मान्यता प्रदान कर दें और बाकी ना करें। चीन तथा बांग्लादेश प्रकार के उदाहरण हैं, चीन को बहुत समय तक अमेरिका तथा बहुत से पश्चिमी देशों ने मान्यता प्रदान नहीं की थी यद्यपि चीन में राष्ट्रत्व के सभी आवश्यक तत्व मौजूद थे । इसी प्रकार बांग्लादेश को प्रारंभ में भारत तथा कुछ और देशों ने मान्यता प्रदान की थी, परंतु कुछ पश्चिमी राज्यों ने काफी समय तक मान्यता प्रदान नहीं की थी।

उद्घोषणात्मक मत(Declaratory or Evidentiary Theory) - इस मत के अनुसार, राष्ट्रत्व या किसी ने राज्य सरकार की सत्ता मान्यता से पहले ही उपस्थित रहती हैं तथा वह मान्यता से स्वतंत्र होती है। इस मत के अनुसार, मान्यता एक औपचारिक अभिस्वीकृति है, जिसके द्वारा एक स्थापित तथ्य स्वीकार किया जाता है। मान्यता के द्वारा केवल यह घोषणा की जाती है कि कोई राज्य अंतर्राष्ट्रीय विधि द्वारा निर्दिष्ट राष्ट्रत्व तत्वों से परिभूत है। इस मत के मानने वाले विधिशास्त्रीयों में **हॉल, विनेगर, ब्रायरली, पिटकोबेट** तथा **फिशर** प्रमुख है। प्रोफेसर हॉल के अनुसार, कोई भी राज्य, राज्यों के परिवार का सदस्य, अधिकार के रूप में तब बन जाता है जब उसने राष्ट्रत्व को प्राप्त कर लिया है। **ब्रायरली** के अनुसार, किसी ने राज्य को मान्यता प्रदान करना निर्माण निर्माणात्मक नहीं वरन उद्घोषणात्मक कार्य है, इसके द्वारा किसी राज्य में राष्ट्रत्व के तत्व नहीं आते।

उद्घोषणात्मक मत की आलोचना

इस मत की भी विधि शास्त्रियों ने आलोचना की है। यह कहना कि मान्यता केवल उद्घोषणात्मक कार्य है, पूर्णतया उचित प्रतीत नहीं होता, यद्यपि यह सत्य है कि राज्य इस मत को अधिक मानते हैं। वास्तव में जब किसी राज्य को मान्यता प्रदान की जाती है तो यह एक उद्घोषणात्मक कार्य होता है। परंतु मान्यता प्रदान करने के बाद उसमें कुछ प्रभाव ऐसे होते हैं जिन्हें निर्णयात्मक प्रकृति का कहा जा सकता है।

निष्कर्ष उपर्युक्त मतों तथा उनकी आलोचना के आधार पर यह निष्कर्ष निकलता है कि मान्यता उद्घोषणात्मक तथा निर्माणात्मक दोनों ही है।

स्टार्क के अनुसार, कदाचित सच्चाई दोनों मतों के बीच कहीं प्रतीत होती है। भिन्न भिन्न तत्वों में एक या दूसरा मत प्रयोग में आ सकता है।

वास्तव में समस्या से सैद्धांतिक है क्योंकि राज्य अभ्यास अपूर्ण है तथा दोनों में से कोई एक निष्कर्ष निकाला जा सकता है। जिस हद तक एक नया राज्य अंतरराष्ट्रीय समुदाय में भाग ले सकता है वह अन्य राज्यों से दीपक्षी संबंधों पर निर्भर करता है तथा यह उनके द्वारा ने राज्य को मान्यता दिए जाने पर निर्भर करता है। विद्वान राज्य द्वारा मान्यता दिए जाने पर ही तथा राज्य द्विपक्षीय संबंधों तथा अंतर्राष्ट्रीय विधि के अंतर्गत लाया जाता है तथा कभी-कभी उसे इस प्रकार आने से मान्यता ना देकर रोका भी जाता है। एक राज्य द्वारा नए राज्य को मान्यता देने से वह मान्यता देने वाले राज्य के संबंध में सीमित अंतरराष्ट्रीय व्यक्तित्व प्राप्त करता है तथा इससे वह पूर्ण अंतरराष्ट्रीय समुदाय का सामान्य रूप से सदस्य स्वीकार नहीं किया जाता । उसे सामान्य रूप से सदस्य तब स्वीकार किया जाता है जब उसे समुचित राज्यों के बहुमत से मान्यता प्राप्त हो जाती है।

मान्यता के प्रकार

मुख्यतः मान्यता दो प्रकार की हो सकती है-

(1) तथ्येन मान्यता (De fecto Recognition)

(2) विधिक मान्यता (De jure Recognition)

<u>तथ्येन मान्यता (De fecto Recognition) -</u> प्रोफ़ेसर स्वार्जनबर्जर के अनुसार, जब कोई राज्य पूर्व अथवा विधि मान्यता को देने में देर करना चाहता है तो वह प्रथम चरण में तक तथ्येन मान्यता प्रदान करता है। तथ्येन मान्यता को देने का मुख्य कारण यह होता है कि मान्यता प्रदान किए जाने वाले राज्य के बारे में संदेह होता है कि वह स्थाई है अथवा नहीं तथा व अंतर्राष्ट्रीय विधि के अंतर्गत अपने दायित्वों को पूरा करने के लिए इच्छुक तथा योग्य है अथवा नहीं। इसके अतिरिक्त कभी-कभी यह भी कारण हो सकता है कि मान्यता प्रदान किए जाने वाला राज्य अपनी प्रमुख समस्याओं को तय करने से इंकार कर दे । तथ्येन मान्यता से तात्पर्य है कि मान्यता प्रदान किए जाने वाला राज्य वास्तव में मान्यता के आवश्यक गुण रखता है तथा अंतर्राष्ट्रीय विधि का विषय माने जाने का अधिकारी है। प्रोफेसर ओपनहाइम के अनुसार, तथ्येन मान्यता तब प्रदान की जाती है जब कोई राज वास्तव में स्वतंत्र होता है तथा एक निश्चित भूमि पर उसका प्रभावशाली नियंत्रण होता है। परंतु उसमें अभी यथेष्ट स्थाई नहीं आया है तथा उसमें अभी मान्यता के कुछ गुण, जैसे अंतर्राष्ट्रीय विधि के दायित्वों को पूरा करने की इच्छा का सामर्थ्य की कमी है । उदाहरण के लिए, रूस की सरकार को अमेरिका तथा अन्य देशों ने कई वर्षों तक विधि मान्यता प्रदान नहीं की, क्योंकि उनके मत से रूस में अंतर्राष्ट्रीय विधि के दायित्व को पूरा करने की इच्छा तथा सामर्थ्य की कमी थी। लाटर पैट के अनुसार, तथ्येन मान्यता देने वाले राज्यों की यह इच्छा प्रकट होती है कि वह बिना राजनयिक संबंध स्थापित किए मान्यता दिए जाने वाले राज्य के साथ अपने संबंध स्थापित करना चाहते हैं।

<u>विधिक मान्यता</u> - यद्यपि मान्यता तब प्रदान की जाती है जबकि मान्यता प्रदान करने वाले राज्य के अनुसार मान्यता दिए जाने वाला राज्य या उसकी सरकार में मान्यता के सभी आवश्यक गुण होते हैं तथा वर राज्य अंतरराष्ट्रीय समुदाय का सदस्य बनने के योग्य होता है। प्रोफेसर एच ए स्मिथ के अनुसार, ब्रिटेन में विधि मान्यता प्रदान किए जाने के पहले निम्नलिखित तथ्यों का होना आवश्यक है-

- स्थायित्व
- राज्य की सरकार को वहां की जनता का सामान्य समर्थन होना
- अंतर्राष्ट्रीय उत्तरदायित्व को पूरा करने की इच्छा तथा सामर्थ्य।

विधि मान्यता अंतिम मान्यता होती है तथा एक बार दिए जाने के बाद इसे वापस नहीं लिया जा सकता। विधिक मान्यता के लिए यह आवश्यक है कि व्यक्त रूप से यह घोषणा की जाए कि राजनयिक संबंध स्थापित करने की इच्छा प्रकट की जाए।

<u>मान्यता के विधिक परिणाम</u>

जैसा कि ऊपर स्पष्ट किया गया है की मानता प्रदान करने का कार्य राजनीतिक कार्य है तथा मान्यता प्रदान करने वाले राज्य के स्वविवेक पर निर्भर करता है । परंतु एक बार मान्यता प्राप्त हो जाने के बाद

इसके कानूनी परिणाम होते हैं। मान्यता प्राप्त करने वाले राज्य को अंतर्राष्ट्रीय विधि तथा राज्य विधि दोनों से ही कुछ अधिकार, शक्तियां तथा विशेष अधिकार प्राप्त हो जाते हैं। यह विशेषाधिकार अंतर्राष्ट्रीय विधि तथा उस राज्य की राज्य विधि के अंतर्गत मिलते हैं जिसने मान्यता प्रदान की है। कुछ विधि शास्त्रियों के अनुसार, चूंकि मान्यता एक राजनीतिक कार्य है इसलिए मान्यता प्रदान करते समय जो विशेष करार होते हैं, उनके कोई विधिक परिणाम नहीं होते हैं। परंतु यह मत उचित नहीं है। केलसन में उचित ही लिखा है कि मान्यता द्वारा मान्यता प्रदान करने वाले तथा देने वाले राज्यों के संबंध विधिक स्तर पर हो जाते हैं तथा उन पर अंतर्राष्ट्रीय विधि के नियम लागू होने लगते हैं।

मान्यता के मुख्यतः निम्नलिखित परिणाम होते हैं-

(1) मान्यता प्राप्त करने वाले राज्य को मान्यता दिए जाने वाले राज्य के न्यायालयों में दावा करने का अधिकार प्राप्त हो जाता है।
(2) उपर्युक्त न्यायालयों में मान्यता प्राप्त करने वाले राज्य के भूत तथा वर्तमान विधायक तथा कार्यपालिका के कार्यों को लागू करवाया जा सकता है।
(3) मान्यता प्राप्त करने वाले राज्य को राजनयिक प्रतिनिधियों के मामलों में उन्मुक्ति प्राप्त करने का अधिकार प्राप्त हो जाता है।
(4) मान्यता प्राप्त करके राज्य को मान्यता प्रदान करने वाले राज्य में स्थित संपत्ति के संबंध में उत्तराधिकार प्राप्त हो जाता है।
(5) नया राज्य जिसे मान्यता प्रदान की गई है मान्यता प्रदान करने वाले राज्यों से राजनयिक संबंध रखने तथा उन से संधि करने की क्षमता प्राप्त कर लेता है।
(6) जहां किसी राज्य की नई सरकार को मान्यता दी गई है उस राज्य तथा अन्य राज्य के मध्य पूर्व संधिया, जिनका लागू रहना हम मान्यता की अनुपस्थिति में असंभव हो गया था, पुनः लागू हो जाती हैं।

क्या मान्यता की वापसी संभव है?

सिद्धांत रूप से विधि मान्यता स्थाई होती है तथा एक बार दिए जाने के बाद वापस नहीं ली जा सकती। परंतु जहां तक तक तथ्येन मान्यता का संबंध है, यह अंतरिम तथा अस्थाई होती है तथा इसके साथ शर्त भी लगाई जाती है । यदि मान्यता प्रदान करने वाला राज्य यह देखता है कि उसने जिस राज्य को तथ्येन मान्यता प्रदान की है, उसके स्थाई होने के चिन्ह कम हो गए हैं अथवा वह अंतरराष्ट्रीय उत्तर दायित्व को पूरा करने में समर्थ नहीं है तो वह ऐसे राज्य को विधि मान्यता प्रदान नहीं करेगा । अतः तथ्येन मान्यता कुछ परिस्थितियों में वापस हो सकती, परंतु विधि मान्यता एक बार दिए जाने के बाद वापस नहीं हो सकती क्योंकि यदि कोई राज्य विधि मान्यता देने के बाद यदि उस मान्यता को वापस करने के लिए कहता है तो अंतर्राष्ट्रीय विधि में उसका कोई अर्थ नहीं होगा । मान्यता के विधि में अर्थ होते हैं- किसी राज्य द्वारा राष्ट्रत्व के तत्वों को प्राप्त कर लेना। किसी विशिष्ट देश को मान्यता ना देनी या मान्यता वापस ले लेने से उसने राज्यों के राष्ट्रत्व के तत्वों का अंत नहीं हो सकता।

प्रत्यर्पण (Extradition)

प्रत्यर्पण की परिभाषा

ओपनहाइम के अनुसार- " अपराधी को जिस देश में उसने अपराध किया है या अभियुक्त है उस देश द्वारा, जहां वह उस समय है, लौटा देना प्रत्यर्पण है।"

प्रसिद्ध विधिशास्त्री ग्रोशस के अनुसार, प्रत्येक देश का यह कर्तव्य है कि या तो अपराध करने वाले व्यक्तियों को स्वयं दंड दे या उसे ऐसे राज्य को लौटा दे जहां उसने अपराध किया है । परंतु व्यवहार में राज इस प्रकार का उत्तरदायित्व स्वीकार नहीं करते। अंतर्राष्ट्रीय विधि में प्रत्यर्पण मुख्यतः द्विपक्षीय संधि ऊपर आधारित है, सिद्धांत रूप में राज्य किसी विदेशी नागरिक को शरण देने में अपना अधिकार समझते हैं। प्रोफ़ेसर ओपन हाईम ने उचित ही लिखा है कि राज्य सदैव विदेशियों को शरण देना अपना अधिकार समझते हैं अतः प्रत्यर्पण के संबंध में अंतर्राष्ट्रीय विधि का प्रथम संबंधी कोई सार्वभौमिक नियम नहीं है जिसके द्वारा राज्यों पर प्रत्यर्पण का उत्तरदायित्व हो।

प्रत्यर्पण का उद्देश्य

सामान्यता प्रत्येक राज्य अपने प्रदेश के अंदर ही अपने नागरिकों पर अधिकारिता रखता है। कभी-कभी ऐसी परिस्थितियां उत्पन्न होती हैं कि एक व्यक्ति अपने देश में अपराध करके दूसरे देश में भाग जाता है। ऐसी दशा में संबंधित देश उस पर क्षेत्राधिकार रखने तथा उसे दंडित करने में अपने आप को असहाय पाता है। यह परिस्थिति शांति तथा व्यवस्था के लिए घातक है। ऐसी परिस्थिति में शांति तथा व्यवस्था तभी रखी जा सकती है जब उस विषय में राष्ट्रों के बीच अंतरराष्ट्रीय सहयोग हो । इस प्रकार अपराधियों को दंड देने की सामाजिक आवश्यकता है और इस सामाजिक आवश्यकता को दूर करने के लिए प्रत्यर्पण का सिद्धांत अपनाया जाता है। प्रत्यर्पण अधिकतर संधियों पर आधारित है।

प्रत्यर्पण के संबंध में राज्यों का विधिक दायित्व- प्रत्यर्पण के संबंध में राज्यों का कोई सामान्य कर्तव्य नहीं है। प्रत्यर्पण द्विपक्षीय संधियों पर निर्भर करता है। प्रत्यर्पण का आदेश विद्यमान प्रत्यर्पण संधि के प्रावधानों के अनुसार ही होता है। प्रत्यर्पण संधि की अनुपस्थिति में अंतर्राष्ट्रीय विधि के सिद्धांत प्रत्यर्पण करने के अधिकार को मान्यता प्रदान नहीं करते हैं । अपराधी के प्रत्यर्पण करने तथा संबंधित राज्य द्वारा उसे वापस मांगने का विधिक अधिकार प्रत्यर्पण संधि के प्रावधानों के अनुसार ही उत्पन्न होता है । यदि कोई राज्य चाहे तो वह बिना प्रत्यर्पण संधि के भी अन्य राज्य की प्रार्थना पर किसी व्यक्ति का प्रत्यर्पण कर सकता है। परंतु इस संबंध में सबकुछ राज्य की स्वेच्छा पर निर्भर करता है, क्योंकि प्रत्यर्पण संधि की अनुपस्थिति में कोई विधिक उत्तरदायित्व नहीं होता है।

राजनीतिक अपराधियों का प्रत्यर्पण - अंतर्राष्ट्रीय विधि का प्रत्यर्पण के विषय में एक प्रसिद्ध नियम है कि राजनैतिक अपराधियों के विषय में प्रत्यर्पण नहीं होता। एडवर्ड कॉलिंस के अनुसार,अधिकतर राज्य ऐसे व्यक्तियों का प्रत्यर्पण करने से इंकार कर देते हैँ जिन्होंने अपराध राजनैतिक उद्देश्यों के लिए किये हैँ, परन्तु राजनैतिक अपराधियों के कानून को लागू करने में न्यायालय को सदैव कठिनाई रही है। राजनीतिक अपराधियों के विषय में प्रत्यर्पण ना करने का आरंभ 1780 में फ्रांस की क्रांति से प्रारंभ हुआ। बाद में और भी देशों ने राजनीतिक अपराधियों के प्रत्यर्पण न करने के संबंध में अपनी स्वीकृति प्रदान की । जैसा कि ऊपर स्पष्ट किया जा चुका है कि राजनीतिक अपराधियों का प्रत्यर्पण ना करने का सिद्धांत वर्तमान समय में लगभग सभी देश स्वीकार करते हैं, परंतु इस सिद्धांत को लागू करने में अनेक कठिनाइयां उपस्थित होती हैं। सबसे कठिन समस्या राजनीतिक अपराधों की परिभाषा है। इस विषय में कोई सर्वमान्य परिभाषा नहीं है। राजनीतिक अपराध की परिभाषा देने के अनेक प्रयास किए गए हैं, परंतु अब तक इसमें सफलता नहीं मिली है।

राजनीतिक अपराध के अर्थ को सीमित करने के लिए अंतरराष्ट्रीय प्रयास - कठिनाई सबसे अधिक उम्र जट इन मामलों में होती है जिनमें राजनीतिक अपराध साथ ही साथ एक साधारण अपराध होता है, जैसे – हत्या, लूटपाट, चोरी इत्यादि। दूसरी ओर कुछ ऐसे जटिल मामले होते हैं जिनमें की कृत्य यद्यपि राजनीतिक उद्देश्य से किया गया हो, राजनीतिक नहीं समझा जाना चाहिए। ऐसे जटिल अपराधों के संबंध में विधि निश्चित करने के लिए तीन महत्वपूर्ण प्रयास किए गए हैं जो निम्नलिखित हैं –

(1) बेल्जियम अटैंटाट उप धारा - यह उप धारा 1854 के जैकिन के मामले में अपनाई गई थी। एक फ्रांसीसी निर्माता जूल्स जैकवीन, जो बेल्जियम का अधिवासी था, तथा उसकी फैक्ट्री में कार्य करने वाला सिलेसियन जैकविन, नामक एक फोरमैन जो कि फ्रांसीसी था, ने सम्राट नेपोलियन तृतीय की हत्या करने के उद्देश्य से लीली तथा क्लैस के मध्य रेल पटरी पर विस्फोट करने का प्रयास किया । फ्रांस ने बेल्जियम से मुक्त दोनों अपराधियों के प्रत्यर्पण के लिए प्रार्थना की, परंतु बेल्जियम के कोर्ट ऑफ अपील ने यह प्रार्थना इसलिए अस्वीकार कर दी क्योंकि बेल्जियम की प्रत्यर्पण विधि के अनुसार राजनीतिक अपराधियों का प्रत्यर्पण निषिद्ध था। अतः ऐसे मामलों से निपटने के लिए बेल्जियम ने 1856 में **अटैंटाट उप धारा** को पारित किया। इस उप धारा के अनुसार, किसी विदेशी सरकार के प्रधान या उसके परिवार के किसी सदस्य की हत्या को राजनीतिक अपराध नहीं समझा जाएगा। बहुत से यूरोपीय राज्यों ने इसी प्रकार की उप धारा पारित की है।

(2) 1881 की रूसी योजना - 1881 में सम्राट एलेग्जेंडर द्वितीय की हत्या से प्रभावित होकर, रूस ने बड़ी शक्तियों को ब्रूसेल्स में सम्मेलन के लिए आमंत्रित किया, जिससे इस प्रस्ताव पर विचार किया जा सके कि अब हत्या या हत्या के प्रयास को राजनीतिक अपराध ना माना जाए। परंतु इंग्लैंड तथा फ्रांस के भाग न लेने के कारण उक्त प्रस्तावित सम्मेलन ना हो सके।

(3) 1892 में स्विजरलैंड द्वारा समस्या के हल का प्रयास -1891 मैं स्विजरलैंड ने एक प्रत्यर्पण संबंधी प्रस्ताव पारित किया। इस अधिनियम के अनुच्छेद 10 में राजनीतिक अपराधों के लिए प्रत्यर्पण ना करने के सिद्धांत को स्वीकार किया गया, परंतु साथ में यह प्रावधान भी रखा गया

कि यदि अपराध की मुख्य विशेषता राजनीतिक ना होकर साधारण होगी तो अभियुक्त का प्रत्यर्पण किया जा सकेगा तथा इस बात का निर्धारण तथा निर्णय सर्वोच्च न्यायालय के ऊपर छोड़ दिया गया उन स्टॉप

भारतीय स्थिति - प्रत्यर्पण अधिनियम, 1962 की धारा 31 की उप धारा क के अनुसार, यदि अभियुक्त का प्रत्यर्पण जिस अपराध के लिए मांगा जा रहा है, वह राजनीतिक है या अभियुक्त न्यायालय के सम्मुख यह सिद्ध कर देता है कि जिस अपराध के लिए उसे दंडित करने का प्रयास किया जा रहा है, वह राजनीतिक है तो उसका प्रत्यर्पण नहीं होगा । अतः इस संबंध में भारतीय विधि अन्य राज्यों की विधियों के समान हैं । यदि राजनीतिक अथवा अन्य कारणों से केंद्र सरकार यह पाती है कि अभियुक्त का प्रत्यर्पण करना उचित नहीं होगा, तो वह अभियुक्त को छुड़वा सकती है।

दोहरी अपराधिकता का नियम (The Rule of Double Criminality) जिस अपराध के लिए प्रत्यर्पण होता है, वह अपराध दोनों संबंधित देशों(प्रत्यर्पण करने वाला तथा प्रत्यर्पण मांगने वाला) मैं अपराध घोषित होना चाहिए।

विशेषता का नियम (The Rule of Speciality) - किसी अपराधी का प्रत्यर्पण किसी अपराध विशेष के लिए होता है और वह देश उस अपराधी के विरूद्ध वही मुकदमा चला सकता है जिसके लिए उसका प्रत्यर्पण हुआ है। इस संबंध में **संयुक्त राज्य बना रोशेर** का वाद उल्लेखनीय है, इस वाद के तथ्य निम्नलिखित हैं - प्रतिवादी रोशेर का प्रत्यर्पण अमेरिका ने इस आधार पर करवाया था कि वह अमेरिकी जहाज में कर्मचारी था तथा एक अन्य कर्मचारी की हत्या करके ब्रिटेन भाग गया था। परंतु अमेरिका में रोशेर के विरुद्ध हत्या का मुकदमा ना चला कर जानसेन नामक व्यक्ति के ऊपर हमला करके उसे बुरी तरह घायल करने के अपराध में मुकदमा चलाया गया। अमेरिका के सर्वोच्च न्यायालय ने निर्णय दिया है कि जब किसी व्यक्ति को प्रत्यर्पण संधि के अंतर्गत न्यायालय के क्षेत्राधिकार के अंतर्गत लाया जाता है तो ऐसे व्यक्ति के विरुद्ध केवल उसी अपराध का मुकदमा चलाया जा सकता है जिसके लिए उसका प्रत्यर्पण हुआ है। प्रस्तुत वाद में प्रत्यर्पण अमेरिका तथा ब्रिटेन के मध्य, 1842 की संधि के अंतर्गत हुआ था। उक्त संधि में यह स्पष्ट प्रावधान प्रत्यर्पण के लिए आवश्यक था कि अभियुक्त के विरुद्ध वह आरोप होना चाहिए जिसका स्पष्टत्या संधि में विवरण है वरन प्रत्यर्पण मांगने वाले देश को वह साक्ष्य भी उपस्थित करना आवश्यक था जिसके आधार पर वह अभियुक्त का प्रत्यर्पण करना चाहता था। अतः जब अभियुक्त का प्रत्यर्पण आरोप विशेषतया सीमित उद्देश्य के लिए होता है तो केवल उसी आरोप तथा सीमित उद्देश्य के लिए उसके विरुद्ध मुकदमा चलाया जा सकता है अन्यथा अभियुक्त को सौंपने वाले देश के साथ धोखा होगा।

प्रत्यर्पण के संबंध में कुछ शब्द अथवा प्रतिबंध - जैसा कि ऊपर स्पष्ट किया जा चुका है कि वर्तमान समय में अंतर्राष्ट्रीय विधि में प्रत्यर्पण मुख्यतः रातों के बीच संधियों पर आधारित है । न्यायालयों ने प्रत्यर्पण के विषय में कुछ सामान्य नियम स्थापित किए हैं, दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि प्रत्यर्पण के लिए निम्नलिखित दशाएं हैं –

(1) प्रायः सभी राष्ट्र इस बात से सहमत हैं कि राजनैतिक अपराधियों का प्रत्यर्पण नहीं होना चाहिए।

(2) सैनिक अपराध पर भी प्रत्यर्पण नहीं किया जाता है।

(3) इसी प्रकार धार्मिक अपराध ही प्रत्यर्पण के अंतर्गत नहीं आते हैं।

आश्रय (Asylum)

आश्रय से तात्पर्य उस शरण तथा सक्रिय सुरक्षा से है जो एक राज्य द्वारा अन्य राज्य के राजनीतिक शरणार्थी को उसकी प्रार्थना पर दी जाती है। आश्रय के दो तत्व हैं -1- शरण, जो अस्थाई सहारे से अधिक होती है, तथा 2- सक्रिय सुरक्षा, अधिकारियों द्वारा जिन के क्षेत्र में आश्रय दिया गया है ।

आश्रय का अधिकार (Right of Asylum)- मानवीय अधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा, 1949 के अनुच्छेद 14 के अनुसार प्रत्येक पीड़ित व्यक्ति को दूसरे देशों में आश्रय मांगने का अधिकार है। परंतु ऐसे व्यक्ति को अंतर्राष्ट्रीय विधि के अंतर्गत यह अधिकार नहीं प्राप्त है कि जब तक वह आश्रय मांगे तो अवश्य मिले। इस विषय में राज्यों का कोई सामान्य उत्तरदायित्व नहीं है। प्रोफेसर ओपन हाइम के अनुसार, वास्तव में आश्रय का अधिकार और कुछ नहीं बल्कि प्रत्येक राज्य की क्षमता है, जिसके अनुसार, वह पीड़ित विदेशी व्यक्तियों को अपने क्षेत्र में आने दे तथा उन्हें आश्रय प्रदान करें। तथाकथित आश्रय का अधिकार विदेशी व्यक्ति का अधिकार नहीं है कि जिस प्रदेश या क्षेत्र में उसने प्रवेश किया है वहां उसे संरक्षण एवं आश्रय प्रदान किया जाए क्योंकि यह आवश्यक नहीं है कि ऐसा राज्य उसकी मांग को स्वीकार कर ले। कुछ देशों के संविधान ने व्यक्तिगत रूप से राजनीतिक रूप से उत्पीड़ित होने वाले व्यक्तियों को यह अधिकार प्रदान किया परंतु यह नहीं कहा जा सकता कि यह अधिकार अंतर्राष्ट्रीय विधि का भाग तथा शब्द राज्यों द्वारा स्वीकृत विधि का सामान्य सिद्धांत हो गया है।

अतः वर्तमान समय में आश्रय प्राप्त करने का अधिकार कदाचित राज्यों की सक्षमता है कि वह उत्पीड़ित विदेशी व्यक्ति को अपने राज्य में प्रवेश करने दे तथा उसे अपने संरक्षण में रहने दे। उत्पीड़ित व्यक्ति ऐसे राज्य से आवभगत पाता है परंतु ऐसा भी आवश्यक हो सकता है कि उसे प्रवेश की अनुमति कुछ शर्तों के साथ दी जाए, उस पर नजर रखी जाए तथा यदि आवश्यक हो तो उसे किसी स्थान पर नजरबंद रखा जाए। यह स्थिति इस सिद्धांत के परिणाम स्वरुप है कि प्रत्येक राज्य का कर्तव्य है कि वह अपने राज्य में रहने वाले व्यक्तियों को ऐसा कुछ भी ना करने दें जिससे दूसरे राज्यों की सुरक्षा को खतरा हो।

आश्रय के प्रकार - आश्रय को निम्नलिखित दो कोटियो में विभाजित किया जा सकता है-(1) प्रादेशिक आश्रय(Territorial Asylum) (2) बाह्य प्रादेशिक आश्रय(Extra Territorial Asylum)

- **प्रादेशिक आश्रय -** जब कोई राज्य किसी अन्य राज्य के व्यक्ति को अपने क्षेत्र के भीतर आश्रय देता है तो उसे प्रादेशिक आश्रय कहते हैं। बहुत प्राचीन समय से यह स्वीकार किया जाता है कि राज्य प्रादेशिक आश्रय देने के मामले में स्वतंत्र होता है तथा यह आश्रय अपराधियों के अतिरिक्त राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक शरणार्थियों को भी दिया जा सकता है। परंतु इस बात में मतभेद है कि कोई राज्य पकड़े हुए युद्ध बंदियों को जो अपने राज्य वापस नहीं जाना चाहते हैं, आश्रय दे सकता है अथवा नहीं? जैसा कि पहले स्पष्ट किया जा चुका है कि किसी पीड़ित व्यक्ति को अंतर्राष्ट्रीय विधि यह अधिकार नहीं प्रदान करती है कि जब वह आश्रय मांगे तो अवश्य मिले और ना ही इस विषय में राष्ट्रों का कोई सामान्य उत्तरदायित्व है। परंतु इस विषय में यह उल्लेखनीय है कि इस संबंध में संयुक्त राष्ट्र महासभा ने 14 दिसंबर 1967 को अपने प्रस्ताव में कहा कि अभ्यास में राज्यों को निम्नलिखित बातें माननी चाहिए –
- कोई व्यक्ति जब आश्रय मांगे तो उसे अस्वीकार नहीं किया जाना चाहिए अथवा जब वह आश्रय देनेवाले राज्य के क्षेत्र में प्रवेश कर लेता है तो उसे निष्कासित नहीं किया जाना चाहिए। परंतु राष्ट्रीय सुरक्षा के आधार पर या अपनी जनता की सुरक्षा के आधार पर या बड़ी संख्या में लोग आश्रय की प्रार्थना करें तो आश्रय की प्रार्थना को अस्वीकार किया जा सकता है।
- यदि कोई राज्य आश्रय देने में कठिनाई महसूस करता है तो व्यक्तिगत राज्य या संयुक्त राष्ट्र के माध्यम से अंतर राष्ट्रीय एकता के भाव से उचित उपाय पर विचार करें।
- जब कोई राज्य पीड़ित व्यक्तियों को आश्रय दे दे तो अन्य राष्ट्र को उनका सम्मान करना चाहिए।

राज्य अन्य राज्यों के व्यक्तियों को आश्रय देने में स्वतंत्र हैं, परंतु इस स्वतंत्रता को संधि द्वारा नियंत्रित तथा सीमित किया जा सकता है।

प्रादेशिक आशय के उदाहरण

दलाई लामा तथा उनके अनुयायियों का अपहरण - चीन की नीतियों से पीड़ित होकर दलाई लामा तथा उनके अनुयायियों ने भारत सरकार से राजनीतिक शरण की प्रार्थना की। भारत ने अपनी क्षेत्रीय प्रभुत्व संपन्न ता का प्रयोग करते हुए दलाई लामा तथा उनके अनुयायियों को आश्रय प्रदान किया। चीन ने भारत के इस कार्य की आलोचना की तथा कहा कि उस यह उसके आंतरिक मामले में हस्तक्षेप है। परंतु वास्तविकता यह है कि भारत ने अपनी क्षेत्रीय प्रभु संपन्नता का प्रयोग किया तथा अपने क्षेत्र के भीतर भारत को पूर्ण स्वतंत्रता थी कि वह आश्रय प्रदान करें अथवा नहीं। अंतर्राष्ट्रीय विधि के अनुसार, इस कार्य को चीन के आंतरिक मामलों में हस्तक्षेप नहीं कहा जा सकता है। प्रसिद्ध **विधि शास्त्री हॉल** में भी लिखा है कि बिना दूसरे राज्यों की इच्छा की परवाह करते हुए प्रत्येक राज्य पूर्ण स्वतंत्र है कि वह अपने क्षेत्र के भीतर जो चाहे करें, तथा यदि उसके कार्य से प्रत्यक्ष रूप से अन्य राज्यों को क्षति

नहीं पहुंचती है तो उसे शरणार्थियों को आश्रय देने का अधिकार है। इस बात से कोई अंतर नहीं पड़ता है कि शरणार्थी राजनीतिक अपराधी है अथवा साधारण अपराधी या उसने अंतर्राष्ट्रीय विधि का उल्लंघन किया है।

बांग्लादेश के शरणार्थियों का उदाहरण - पाकिस्तान के सैनिक प्रशासन की दमनकारी नीतियों तथा जन वध के परिणाम स्वरुप बांग्लादेश के लाखों व्यक्तियों ने भारत से राजनीतिक शरण प्रदान किए जाने की प्रार्थना की। भारत में न केवल उदारता से उन्हें आश्रय प्रदान किया बल्कि उनके भोजन तथा अन्य आवश्यक प्रबंध करके इतनी बड़ी संख्या में लोगों को शरण देने का एक अप्रत्याशित उदाहरण भी प्रस्तुत किया । यह कार्य मानवीय अधिकारों के कमीशन की घोषणा के रूप में अनुच्छेद एक तथा तीन के अनुसार था। इसके अतिरिक्त 1951 के संयुक्त राष्ट्र के शरणार्थी अभी समय के अनुरूप भी यह कार्य उचित था। यदि भारत लाखों पीड़ित लोगों को शरण नहीं देता तथा उनको वापस लौटा देता तो इन लोगों के वध होने तथा अनेक प्रकार की पीड़ा पहुंचने की पूर्ण संभावना थी। अतः भारत का कार्य न केवल प्रशंसनीय था बल्कि अंतर्राष्ट्रीय विधि के नियमों, सिद्धांतों तथा उनमें निहित भावनाओं के भी अनुकूल था।

बाह्य प्रादेशिक आश्रय --- बाह्य प्रादेशिक आश्रय उस आश्रय को कहते हैं जो कि राज्य अपने क्षेत्र के बाहर प्रदान करता है। आधुनिक अंतरराष्ट्रीय विधि राज्यों से बाहर प्रादेशिक आश्रय प्रदान करने के अधिकार को मान्यता नहीं देता है। बाह्य प्रादेशिक आश्रय केवल अपवाद के रूप में या विशेष परिस्थितियों में ही दिया जा सकता है । बाह्य प्रादेशिक आश्रय को निम्नलिखित कोटियों में विभाजित किया जा सकता है।

(1) **विदेशी दूतावास में आश्रय** - किसी दूतावास के प्रधान द्वारा आश्रय देने के समान अधिकारों को अंतर्राष्ट्रीय विधि मान्यता प्रदान नहीं करती है । इसका स्पष्ट कारण यह है कि इससे संबंधित राज्य (वह राज्य जहां दूतावास स्थित है) को क्षेत्रीय प्रभु संपन्नता पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। इसके अंतर्गत अभियुक्त को क्षेत्रीय राज्य की अधिकारिता से हटाया जाता है जो राज्य की क्षमता वाले मामलों में हस्तक्षेप है। क्षेत्रीय प्रभु संपन्नता के ऐसे अल्फी करण्या अनादर को सामान्यतया स्वीकार नहीं किया जा सकता। किसी विशिष्ट वादियां मामले में इसे तभी स्वीकार किया जा सकता है जबकि इसके लिए विधि आधार को स्थापित किया जाए। यह विचार अंतरराष्ट्रीय न्यायालय ने **एसाइलम(कोलंबिया बनाम पेरु)** बाद में व्यक्त किए थे।

यदि कोई राज्य किसी विदेशी को नियमित रूप से भी आश्रय प्रदान कर देता है तो भी उस राज्य का यह उत्तरदायित्व नहीं होता है कि वह आश्रय देने वाले व्यक्ति को उसके देश को लौटा दे। **हाया डेला टोरे वाद** कोलंबिया में **हाया डेला टोरे** को नियमित रूप से आश्रय दिया था, परंतु अंतरराष्ट्रीय न्यायालय ने निर्णय लिया कि कोलंबिया कहिए उत्तर दायित्व नहीं है कि वह **हाया डेला टोरे** को पेरू को लौटाए।

उदाहरण के लिए -"क" राज्य "X" के नागरिक ने अपने देश के संसद भवन के अंदर विस्फोटक पदार्थ फेंका और उसके बाद राज्य **"Y"** के दूतावास जोकि "X" की

राजधानी में स्थित है उसमें शरण मांगी। राजदूत ने अनुमति दे दी। "X" ने "**क "** के प्रत्यर्पण की मांग की है।

जैसा कि ऊपर स्पष्ट किया गया है कि विदेशी दूतावास में आश्रय प्रदान करने में उस राज्य (जहां दूतावास स्थित है) प्रभुत्व संपन्नता पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। ऐसा आश्रय केवल स्थाई हो सकता है तथा केवल उपर्युक्त लिखित परिस्थितियों में ही दिया जा सकता है। प्रस्तुत उदाहरण में आश्रय या शरण उपर्युक्त वर्णित परिस्थितियों में नहीं दिया गया है, अतः यह अनियमित है। इसलिए "Y" राज्य को "X" राज्य की प्रार्थना पर "**क "** का प्रत्यर्पण कर देना चाहिए। परंतु **हाया डेला टोरे वाद** मैं अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय ने धारी किया था कि ऐसी परिस्थिति में "Y" राज्य का यह उत्तर दायित्व नहीं है कि वह "X" राज्य को "क" को लौटाए। वर्तमान समय में इस प्रकार का आश्रय प्रदान करना उचित नही माना जाता है। यदि "Y"राज्य "क" का प्रत्यर्पण नहीं करता है तो "X" राज्य को अधिकार है कि "क" जैसे ही दूतावास से बाहर निकले या उसे "Y" राज्य में ले जाने का प्रयास किया जाए, तो वह उसे गिरफ्तार कर ले तथा विधि के अनुसार उसे दंडित करें।

(2) **वाणिज्य दूतावास में आश्रय---** वाणिज्य दूतावास के संबंध में भी उपर्युक्त सिद्धांत लागू होते हैं ।

(3) **अंतरराष्ट्रीय संस्थाओं के कार्यालय में आश्रय--** संयुक्त राष्ट्र तथा विशिष्ट एजेंसियों के मुख्यालय करारों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि अंतरराष्ट्रीय संस्थाओं को अपने कार्यालय में आश्रय देने के विषय में कोई सामान्य अधिकार प्राप्त नहीं है। परंतु जैसा कि **स्टार्क** ने लिखा है कि भीड़ से खतरा उत्पन्न होने की दशा में यह संस्थाएं भी आश्रय प्रदान कर सकती हैं।

(4) **युद्ध पोतों में आश्रय--** कुछ लेखकों का मत है कि वह व्यक्ति जो न्यायिक नहीं है तथा स्थल में अपराध करने के पश्चात किसी युद्धपोत में आश्रय प्राप्त कर लेता है, नाथू स्थानीय अधिकारियों द्वारा गिरफ्तार किए जा सकते हैं और ना ही जहाज से हटाए जा सकते हैं। जहाज के कप्तान की सहमति से ही उन्हें गिरफ्तार किया जा सकता है। दूसरी ओर कुछ लेखकों का मत है कि ऐसे व्यक्तियों को स्थानीय पुलिस को सौंप दिया जाना चाहिए, परंतु मानवीय आधारों पर यदि ऐसे व्यक्ति के जीवन को खतरा है तो उसे राजनीतिक शरण दी जा सकती है। इस विषय में **फेनविक** ने लिखा है-" जबकि साधारण अपराधियों को आश्रय नहीं दिया जाता है, बहुधा राजनीतिक शरणार्थियों को अब भी आश्रय दिया जाता है। "

(5) **व्यापारिक जहाजों पर आश्रय--** व्यापारिक जहाजों को स्थानीय क्षेत्र अधिकार से उन्मुक्ति प्राप्त नहीं होती है, अतः उन्हें स्थानीय अधिकारियों को आश्रय देने का अधिकार नहीं है।

निष्कर्ष में यह कहा जा सकता है कि आपने देने के अधिकार से वास्तव में तात्पर्य किसी राज्य के अन्य राज्यों के पीड़ित व्यक्तियों को अपने क्षेत्र में आने देने तथा

अपनी सुरक्षा में रहने तथा आश्रय देने से हैं। ऐसा पीड़ित व्यक्ति आश्रय देने वाले राज्य द्वारा आवभगत पाता है। परंतु जो राज्य ऐसे व्यक्ति के विरुद्ध मुकदमा चलाना चाहता है तो उसके हित में यह आवश्यक हो जाता है कि ऐसे व्यक्ति को किसी जगह में नजरबंद या निगरानी में रखा जाए। क्योंकि प्रत्येक राज्य का कर्तव्य है कि वह अपने क्षेत्र में रहने वाले व्यक्तियों को ऐसा कुछ ना करने दें जिससे अन्य राज्य की सुरक्षा को खतरा हो।

हस्तक्षेप(Intervention)

हस्तक्षेप का अर्थ तथा परिभाषा- प्रोफेसर ओपन हाइम के अनुसार, हस्तक्षेप किसी राज्य द्वारा एक अन्य राज्य के मामले में इस उद्देश्य से तानाशाही या अधिनायक वादी हस्तक्षेप करने को कहते हैं जिससे या तो वस्तुओं की विद्वान दशाओं को बनाए रखा जाए अथवा उनमें परिवर्तन लाया जाए। ("intervention is dictatorial interference by a state in the affairs of another state for the purpose of maintaining or altering the actual condition of things. ") सिद्धांत रूप में अंतर्राष्ट्रीय विधि द्वारा हस्तक्षेप निषेध है। यह निश्चित भी प्रत्येक राज्य की प्रमुख संपन्नता क्षेत्रीय अखंडता एवं राजनीतिक स्वतंत्रता के अधिकार का उपप्रमेय या उप सिद्धांत(Corollary)है।

प्रोफेसर केलसन के अनुसार, अंतर्राष्ट्रीय विधि सभी परिस्थितियों के हस्तक्षेप का निषेध नहीं करती। उनके अनुसार, यदि कोई राज्य दूसरे राज्य के मामले में सख्ती के प्रयोग द्वारा हस्तक्षेप करता है तो अंतर्राष्ट्रीय विधि के अंतर्गत इस उल्लंघन की प्रतिक्रिया के रूप में हस्तक्षेप किया जा सकता है।

प्रोफ़ेसर क्विंसी राइट के अनुसार, हस्तक्षेप सैनिक अथवा राजनीतिक दोनों प्रकार के हो सकते हैं। यदि कोई राजनीतिक संदेश में आदेश या धमकी निहित है, या उसमें शक्ति का प्रयोग करने की बात का समावेश है तो वह भी हस्तक्षेप कहलाएगा।

प्रोफेसर निकोलस ग्रीनवुड ओनफ ने लिखा है संयुक्त राष्ट्र चार्टर के अनुच्छेद 2 (7) के अंतर्गत हस्तक्षेप न करने की नीति केवल संयुक्त राष्ट्र के लिए ही है और यह राज्यों पर लागू नहीं होती। वास्तव में राज्य द्वारा हस्तक्षेप न करने के सिद्धांत को संयुक्त राष्ट्र चार्टर के अनुच्छेद 2(4) मैं प्रतिपादित किया गया है। इसके अनुसार राज्य अपने पारस्परिक संबंधों में एक दूसरे के मामले में हस्तक्षेप नहीं करेंगे तथा एक दूसरे की राजनीतिक स्वतंत्रता तथा प्रभुत्व संपन्न ता का सम्मान करेंगे।

इस विषय पर संयुक्त राष्ट्र की महासभा ने 1965 में एक प्रस्ताव में इस सिद्धांत को फिर से दोहराया है। इस प्रस्ताव में कहा गया है कि " किसी राज्य को दूसरे राज्य के आंतरिक या बाहरी मामलों में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से दखल देने का अधिकार नहीं है।" इस विषय में मार्च, 1973 में सुरक्षा परिषद की जो बैठक पनामा में हुई, उसमें यह निश्चय किया गया कि कुछ विषयों पर संयुक्त राष्ट्र संघ में अब तक पारित किए गए प्रस्तावों का एक चार्टर बनाया जाए, जिसका नाम पनामा चार्टर रखा जाए। जिन विषयों को इस चार्टर में समावेश करने का प्रस्ताव था, उसमें हस्तक्षेप प्रमुख था। हस्तक्षेप न करने का सिद्धांत वास्तव में राज्यों की समानता, प्रभुत्व संपन्न का

तथा स्वतंत्रता के आदर्श की खोज का एक भाग है। इसके अनुसार एक राज्य को दूसरे राज्य के आंतरिक मामलों में दखल नहीं देना चाहिए। राज्य की सरकारें भी इस सिद्धांत को स्वीकार करती हैं।

हस्तक्षेप के आधार (Grounds of intervention)- परंपरागत अंतर्राष्ट्रीय विधि के अंतर्गत हस्तक्षेप के निम्नांकित आधार थे-

1. आत्मरक्षा तथा आत्म संरक्षण
2. मानवता के आधार
3. संधि अधिकारों को लागू करने के लिए
4. अवैध हस्तक्षेप को रोकने के लिए हस्तक्षेप
5. शक्ति का संतुलन
6. व्यक्तियों तथा उनकी संपत्ति का संरक्षण
7. सामूहिक हस्तक्षेप
8. अंतर्राष्ट्रीय विधि की रक्षा हेतु हस्तक्षेप
9. गृह युद्ध में हस्तक्षेप

इन आधारों को संयुक्त राष्ट्र के प्रावधानों ने काफी प्रभावित किया है तथा इनमें से कई अवैध हो गए हैं। उपर्युक्त आधारों में से आधार 3, 4, 5, 6 तथा 8 संयुक्त राष्ट्र चार्टर की उपस्थिति में पूर्ण रूप से अवैध हो गए। मानवता के आधार पर भी एक राज्य दूसरे राज्य के मामलों में हस्तक्षेप नहीं कर सकता है। इसी प्रकार सामान्यता संयुक्त राष्ट्र भी इस आधार पर राज्यों के घरेलू मामलों में हस्तक्षेप नहीं कर सकता है परंतु इसका एक अपवाद है। यदि अध्याय 7 के अंतर्गत सुरक्षा परिषद यह निर्णय लेती है कि किसी राज्य में मानव अधिकारों के उल्लंघन से अंतरराष्ट्रीय शांति तथा सुरक्षा को खतरा है तो संयुक्त राष्ट्र कार्यवाही कर सकता है, अतः निम्नलिखित आधार वर्तमान समय में भी वैध हैं।–

1. आत्मरक्षा के आधार पर हस्तक्षेप,
2. मानवता के आधार पर हस्तक्षेप,
3. सामूहिक हस्तक्षेप, तथा
4. गृह युद्ध के हस्तक्षेप।

राज्यों के लिए केवल प्रथम आधार उपलब्ध है जबकि संयुक्त राष्ट्र के लिए शेष तीनों आधार उपलब्ध है।

1. **आत्मरक्षा (Self defence) -** आरंभ में ही यह नोट करना वांछनीय होगा कि परंपरागत अंतर्राष्ट्रीय विधि में यह आधार आत्मरक्षा तथा आत्म संरक्षण का आधार कहलाता था । संयुक्त राष्ट्र चार्टर अपनाने के पश्चात यह आधार केवल आत्मरक्षा का अधिकार रह गया है । आत्मरक्षा की अपेक्षा आत्म संरक्षण का अधिकार बड़ा ही व्यापक था । इसके अंतर्गत इस आधार पर भी हस्तक्षेप किया

जा सकता था कि कोई अन्य राज आक्रमण करने की तैयारी कर रहा है। इसके अतिरिक्त आत्म संरक्षण के किसी अन्य वैध कारण के आधार पर हस्तक्षेप किया जा सकता था। चार्टर के अनुच्छेद 51 में इस अधिकार के प्रयोग की कई परी सीमाएं वर्णित की गई हैं। किसी राज्य को अपनी आत्मरक्षा हेतु दूसरे राज्यों के आंतरिक या बाहरी मामलों में हस्तक्षेप करने का अधिकार है। इस संबंध में **कैरोलिन के वाद में** अमेरिका के सचिव **वेब्स्टर (Webster)** ने महत्वपूर्ण नियम प्रतिपादित किया। उनके अनुसार, शक्ति का प्रयोग तभी उचित होगा जबकि आत्मरक्षा की आवश्यकता शीघ्र, प्रबल तथा ऐसी आवश्यकता हो जिसमें संबंधित राज्य के पास कोई और उपाय ना हो तथा उसमें निर्णय लेने का कोई भी लक्षण उपलब्ध ना हो। (The necessity which would be excused as a necessity of self defence should be instant, overwhelming and leaving no choice of means, and movement for deliberation) प्रस्तुत बाद में, कुछ क्रांतिकारी कनाडा(जो ब्रिटिश उपनिवेश था) कि सरकार को उलटना चाहते थे। इन क्रांतिकारियों को नियाग्रा नदी के उस पार(अमेरिका क्षेत्र) हथियार और मनुष्यों को भेजने का कार्य किया जा रहा था। विरोध करने पर भी जब अमेरिका ने कोई कार्यवाही नहीं की तो ब्रिटिश सैनिकों ने नदी पार करके कैरोलीन नामक जहाज को पकड़ लिया तथा उसमें आग लगाकर जल प्रपात की ओर बहता हुआ छोड़ दिया। यह सब अमेरिकी क्षेत्र में किया गया। ब्रिटेन का कहना था कि ऐसा करना आत्मरक्षा के लिए आवश्यक था।

2. **मानवता के आधार पर हस्तक्षेप** - इस आधार पर केवल संयुक्त राष्ट्र से छिप कर सकता है बशर्ते कि मानव अधिकारों का उल्लंघन इस सीमा तक पहुंच जाएगी उस से अंतर्राष्ट्रीय शांति एवं सुरक्षा भंग होती है या उस का खतरा उत्पन्न हो सकता है। 1991 में संयुक्त राष्ट्र ने इस आधार पर इराक के कुर्डस लोगों के पक्ष में हस्तक्षेप किया था।
3. **सामूहिक हस्तक्षेप** - वर्तमान समय में सामूहिक हस्तक्षेप एक वैध तथा न्यायोचित हस्तक्षेप घोषित कर दिया गया है। संयुक्त राष्ट्र चार्टर के अध्याय 7 में सुरक्षा परिषद को सामूहिक कार्यवाही करने का अधिकार प्राप्त है, अर्थात विश्व शांति तथा सुरक्षा बनाए रखने के लिए तथा किसी आक्रमण को रोकने के लिए संयुक्त राष्ट्र सामूहिक हस्तक्षेप कर सकता है। अध्याय 7 के अंतर्गत कार्यवाही करने हेतु यह आवश्यक है कि सर्वप्रथम सुरक्षा परिषद यह निर्णय की अंतरराष्ट्रीय शांति तथा सुरक्षा को खतरा है अथवा उसकी आशंका है अथवा संबंधित राज्य ने आक्रमण किया है। सर्वप्रथम सुरक्षा परिषद ऐसी कार्रवाई करती है जिसमें शक्ति का प्रयोग ना हो। परंतु यदि इस कार्यवाही से समस्या का समाधान नहीं होता है तो उसे शक्ति प्रयोग करने का भी अधिकार प्राप्त है।

संयुक्त राष्ट्र ने इन्हीं अधिकारों के अंतर्गत 1950 में कोरिया, 1961 में कांगो पता 1991 में इराक में सामूहिक कार्रवाई की थी।

4. **गृह युद्ध में हस्तक्षेप-** आधुनिक युग में अंतरराष्ट्रीय समुदाय के विकास होने के कारण विश्व के राष्ट्रों का आपस में घनिष्ठ संबंध हो गया है। अतः एक राज्य की घटनाओं दूसरे राज्य पर प्रभाव पड़ना स्वाभाविक है। अतः यदि किसी राज्य में विद्रोहियों ग्रह युद्ध हो जाता है तो उसका प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से प्रभाव दूसरे राज्य पर भी पड़ता है। आधार पर भूतकाल में कुछ राज्यों ने दूसरे राज्यों के मामलों में हस्तक्षेप किया है। उदाहरण के लिए 1934 38 में जर्मनी तथा इटली की सरकारों ने स्पेन के गृह युद्ध में हस्तक्षेप किया। 1968 में रूस ने चेकोस्लोवाकिया के गृह युद्ध में हस्तक्षेप किया तथा उसे न्याय उचित बताया। अब प्रश्न उठता है कि इस प्रकार का हस्तक्षेप कहां तक उचित है? किसी राज्य को अन्य राज्य के गृह युद्ध में हस्तक्षेप करने का अधिकार नहीं है। संयुक्त राज्य सामान्यतया गृह युद्ध में हस्तक्षेप नहीं कर सकता है। परंतु यदि सुरक्षा परिषद चार्टर के अध्याय 7 के अंतर्गत यह निर्णय लेती है कि गृह युद्ध से अंतरराष्ट्रीय शांति का उल्लंघन हुआ है अथवा अतिक्रमण का कृत्य हुआ है, तो सुरक्षा परिषद सामूहिक कार्रवाई कर सकती है। संयुक्त राष्ट्र द्वारा इस प्रकार की कार्यवाही का एक सफल उदाहरण 1961 में कांगो में हस्तक्षेप है । कांगो में संयुक्त राष्ट्र ने वहां के गृह युद्ध को समाप्त करने तथा शांति तथा सुरक्षा की स्थापना करने में सफलता प्राप्त की।

5. **मानवीय अधिकारों के उल्लंघन के आधार पर हस्तक्षेप (humanitarian intervention)** - सामान्य अंतर्राष्ट्रीय विधि के अंतर्गत आत्मरक्षा तथा मानव अधिकारों का उल्लंघन के आधार पर हस्तक्षेप किया जा सकता था। संयुक्त राष्ट्र चार्टर के प्रस्तावना में मानवीय अधिकारों के प्रति फिर से विश्वास प्रकट किया गया है। चार्टर के अनुच्छेद 1 में घोषणा की गई है कि मानवीय अधिकारों के प्रति राष्ट्रीय सहयोग को बढ़ाना तथा इन अधिकारों को प्रोत्साहन प्रदान करना संयुक्त राष्ट्र चार्टर का एक उद्देश्य होगा। संयुक्त राष्ट्र चार्टर के अनुच्छेद 55 और 56 में सदस्यों ने मानवीय अधिकारों के विषय में संयुक्त कार्रवाई करने का वचन दिया है। इस प्रकार संयुक्त राष्ट्र चार्टर ने मानवीय अधिकारों को बहुत अधिक महत्व दिया है। इसके अतिरिक्त 1948 में संयुक्त राष्ट्र सामान्य परिषद ने मानवीय अधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा(Universal Declaration of Human Rights) को सर्वसम्मति से पारित कर दिया। इसके अलावा 1948 में जनवध अभिसमय (genocide convention) भी स्वीकृत किया गया। परंतु इस प्रकार का हस्तक्षेप केवल संयुक्त राष्ट्र इस आधार पर कर सकता है कि मानवीय अधिकारों के उल्लंघन से अंतरराष्ट्रीय तथा सुरक्षा को खतरा पैदा हो गया है अथवा पैदा होने की आशंका है। किसी राज्य को दूसरे

राज्य के मामलों में किस आधार पर हस्तक्षेप करने का अधिकार नहीं है। यह बात संयुक्त राष्ट्र चार्टर के अनुच्छेद 2 की उप धारा 4 में प्रतिपादित हस्तक्षेप न करने के नियम से बिल्कुल स्पष्ट है। यदि मानवीय अधिकारों के उल्लंघन के आधार पर हस्तक्षेप किया जा सकता है तो ऐसा हस्तक्षेप केवल संयुक्त राष्ट्र स्वयं कर सकता है क्योंकि विधि शास्त्रियों का मत है कि मानवीय अधिकारों का उल्लंघन अब किसी राज्य का आंतरिक विषय ना होकर अंतरराष्ट्रीय विषय बन गया है ।

हस्तक्षेप के विषय में सिद्धांत

मोनरो सिद्धांत(Monroe doctrine) - इस सिद्धांत को अमेरिका के राष्ट्रपति **मोनरो** ने प्रतिपादित किया था, इसलिए इसे **मोनरो** सिद्धांत कहते हैं। **मोनरो** सिद्धांत हस्तक्षेप न करने तथा हस्तक्षेप न करने देने के सिद्धांत पर आधारित था। इसके द्वारा राष्ट्रपति **मोनरो** ने यह स्पष्ट घोषणा की थी कि अमेरिका ना तो यूरोपीय राष्ट्रों के आपसी मामलों में हस्तक्षेप करेगा और ना ही यूरोपीय देशों के अमेरिका महाद्वीप में हस्तक्षेप को सहन करेगा। प्रोफेसर ओपन हाईम उचित लिखा है कि **मोनरो** सिद्धांत वास्तव में विधिक प्रकृति का ना होकर राजनीतिक प्रकृति का है परंतु राष्ट्र संघ की संविदा के अनुच्छेद 21 के प्रावधान ने इस अर्द्ध विधिक या विधि से मिलती हुई स्थिति प्रदान की थी। अनुच्छेद 21 के अनुसार राष्ट्र संघ की संविदा से क्षेत्रीय समझौते, जैसे **मोनरो** सिद्धांत प्रभावित नहीं होंगे। संयुक्त राष्ट्र चार्टर के प्रावधानों की उपस्थिति में अब **मोनरो** सिद्धांत का महत्व लगभग समाप्त हो गया है।

ड्रेगो सिद्धांत(Drago Doctrine) - इस सिद्धांत को अर्जेंटीना के विदेश मंत्री **ड्रेगो** ने प्रतिपादित किया था। वास्तव में यह सिद्धांत **मोनरो** सिद्धांत का ही पूरक सिद्धांत है। इस सिद्धांत के अनुसार, कोई भी यूरोपीय देश सार्वजनिक ऋण के आधार पर अमेरिका महाद्वीप के राष्ट्रों के मामले में हस्तक्षेप करने का अधिकार नहीं रखता। यह सिद्धांत किसने प्रतिपादित किया किया गया क्योंकि यूरोपीय राष्ट्रों ने अपने नागरिकों के दावों के पक्ष में सैनिक बल का प्रयोग करना आरंभ कर दिया था। इसका उदाहरण इंग्लैंड, जर्मनी तथा इटली द्वारा वेनेजुएला के विरुद्ध नाकाबंदी थी। यह नाकाबंदी इसलिए की गई थी कि वेनेजुएला को अपने वित्तीय दायित्व को पूरा करने के लिए मजबूर किया जाए। ड्रेगो सिद्धांत एक प्रकार से **मोनरो** सिद्धांत का पूरक है तथा इसका वह महत्व नहीं है जो कि मोनरो सिद्धांत का है। यह स्मरणीय है कि संयुक्त राष्ट्र चार्टर

द्वारा हस्तक्षेप न करने के सिद्धांत को स्थापित किया गया है और इस के संदर्भ में ड्रेगो सिद्धांत की महत्ता तथा उपयोगिता समाप्त हो गई है।

हस्तक्षेप के संबंध में प्रमुख घटनाएं

आत्मरक्षा तथा सुरक्षा के आधार पर हस्तक्षेप की निम्नलिखित प्रमुख ऐतिहासिक घटनाएं निम्न प्रकार हैं-

(1) कैरोलीन वाद, 1841

(2) कार्फू चैनल वाद, 1949

(3) कोरिया का मामला, 1950

(4) हंगरी में रूसी हस्तक्षेप, 1956

(5) इंग्लैंड, फ्रांस, इजरायल द्वारा मिस्र में हस्तक्षेप, 1956

(6) चेकोस्लोवाकिया में रूसी हस्तक्षेप, 1968

(7) गोवा का मामला

(8) क्यूबा का मामला, 1962

(9) वियतनाम का मामला

(10) अमेरिका का कंबोडिया में हस्तक्षेप, 1970

(11) ग्रेनाडा में अमेरिकी हस्तक्षेप, 1983

(12) निकारागुआ में अमेरिकी हस्तक्षेप,

(13) लीबिया पर अमेरिकी अतिक्रमण, 1986

(14) श्रीलंका में भारतीय वायु यान द्वारा रसद सामग्री, दवाई आदि श्रीलंका की बिना अनुमति के गिराना आदि

(15) पनामा में अमेरिकी हस्तक्षेप, 1989

(16) इराक द्वारा कुवैत पर अतिक्रमण तथा उसका अधिग्रहण, 1990 इत्यादि।